[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3448

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत एवं समाज

डॉ.शुचि गुप्ता
के. एल. पी. कालेज रेवाडी (हरियाणा)

गोपी पतिरनतोऽपि गीत ध्वनिवंशगतः।
साम गीतरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती।।

अर्थात् वह ब्रह्मा का ही एक रूप है। गोपीपति (भगवान कृष्ण) जो अनन्त है वे भी गीत ध्वनि के वशीभूत है। ब्रह्मा जी सामगीत रत है, अर्थात् उन्हें सामगान अतिप्रिय है। सरस्वती देवी वीणा पर आसक्त है।

संगीत ग्रन्थ 'स्वर मेल कलानिधि' में वर्णित प्रस्तुत श्लोक सृष्टि में संगीत कला की अनन्तता को दर्शाता है। भारतीय समाज में संगीत उस समय से व्याप्त है जब समाज पूर्ण रूप से विकसित भी नहीं हुए थे। मानव कल्याण हेतु ज्ञान की देवी माँ सरस्वती ने नारद जी के माध्यम से इस देवी कला को भूलोक में भेजा था। तभी से संगीत एवं समाज रूपी अविरल धाराएं एक–दूसरे से आश्रय पाते हुए निरन्तर समान गति से बह रही है। समाज व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य एवं आधारभूत ढांचा है जिसके आश्रय में वह अपने आचार–विचार, रीति–रिवाज, संस्कार, मान्यताएं एवं परम्पराएं आदि सांझा करता है, प्रतिदान स्वरूप समाज व्यक्ति को सुरक्षात्मक कवच प्रदान करता है। वाणी एवं कलाओं के माध्यम से भावभिव्यक्ति द्वारा वह समाज से दृढ़ता से जुड़ा रहता है। यह क्रम यू ही निरन्तर चला आ रहा है। जब वह जंगली अवस्था में था तब भी वह सामाजिक प्राणी था और झुण्डो में रहता था। भाषा के अभाव में भी संकेतों एवं भाव–भंगिमाओं के साथ हस्त–पाद संचालन द्वारा पत्थरों को बजाकर संगीतमय तरीके से भावों का आदान–प्रदान करता था। समय के साथ–साथ झुण्ड समाज में परिवर्तित हो गए और संगीत कला भी विकसित होती गई। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज एवं संगीत की विकास प्रक्रिया साथ–साथ चलते हुए वर्तमान स्वरूप तक पहुंची है।

सर सौरिन्द्र मोहन टेगोर के अनुसार 'अरब, फारस, चीन, जापान आदि देशो में संगीत का प्रचार एक ही ढंग से हुआ और इसका गठन पारस्परिक सहयोग से हुआ।'[2] यही कारण है कि इन दोनों में इतनी घनिष्ठता दृष्टि गोचर होती है। संगीत एवं समाज के मध्य ऐसी और भी अनेको सादृश्यताएं है जो इनके सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को दर्शाती है जिसका वर्णन अग्रलिखित पंक्तियों में करना अपेक्षित है।

1) **सार्वभौमिकता–** सार्वभौमिकता के सन्दर्भ में संगीत एवं समाज दोनों एक दूसरे के पर्याय जैसे प्रतीत होते है। विश्व के छोटे से लेकर विस्तृत भू–भाग तक समाज ही मनुष्य के विचारो, मान्यताओं, रीति रिवाजों, आदि का प्रतिनिधित्व करता है। संगीत 'Music is a Universal Language' के रूप में इनकी सार्वभौमिकता की परिभाषा को और अधिक सार्थक करता है। संगीत हर धर्म, मजहब, समाज को अभित्यक्ति की सार्वभौमिक भाषा प्रदान करता है। 'हजरत दाऊद अलियाउत्सलाम का तलावत जबूर के समय 'मुरामीर' तथा अन्य वाद्यों से काम लेना, ईसाईयों द्वारा गिरिजा घरों में करूण रागो में संगीत वाघो का प्रयोग करना, हिन्दुओं द्वारा मन्दिरों में भजन, आरतीगान को ईश्वरोपासना मानना व करूण रस प्रधान रागों का होना। मुस्लमानों का तलावत कुराने पाक, अजां और कुर्रात नवाज में विशिष्ट एवं प्रभावपूर्ण आवाज स्वरावली का प्रयोग करते है[3] प्रस्तुत सन्दर्भ इस तथ्य की पुष्टि के लिए पर्याप्त है कि विश्व के हर कोने में फैले समाज की सार्वजनिक भावाभित्यक्ति का माध्यम संगीत ही है।

2. **परिवर्तनशीलता–** परिवर्तनशीलता का तत्व संगीत को समाज से जोंडने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यह तत्व अनायास ही दोनों (संगीत एवं समाज) के संदर्भ में समान है। परिवर्तनशील प्रकृति के कारण ही संगीत एवं समान एक दूसरे से और अधिक दृढ़ता से जुडे रहे।

'क्षणे–खणे यन्नवतामुपैती तदेव रूपं रमणीयताया।।'[4]

अर्थात् प्रतिक्षण नवीनता रमणीयता का समावेष करती है। यदि एक ओर संगीत में परिवर्तन के दौरान आई प्रतिपल नवीनता के समावपेश ने ही समाज को संगीत के प्रति आकृष्ट रखा, तो दूसरी ओर संगीत अपनी परिवर्तनशीलता से भावों की अभिव्यक्ति को नित नए रूप प्रदान करता गया जिससे संगीत कला का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता गया। वैदिक कालीन समाज पूर्णरूप से धार्मिकता के आवरण में सिमटा हुआ था तब तत्कालीन संगीत पर धर्म का प्रभाव था। मध्ययुगीन भोग

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

विलासी समाज के संगीत पर श्रृंगारिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक युग में समाज में व्याप्त वैश्वीकरण की प्रवृत्ति ने संगीत कला को भी वैश्विकता प्रदान की है। इस प्रवृति को आत्मसात् करते हुए संगीत कला अनेकों नवीन आधुनिक प्रवृतियों का जन्म हुए है जिससे इस कला का विकास चमोत्कर्ष पर है। इसे संगीत के वैष्वीकरण का युग भी कहे तो अतिष्योक्ति नहीं होगी। वर्तमान समाज ने इस वैष्वीकरण की प्रवृति का स्वागत जोष के साथ किया है। यही प्रक्रिया सदियों तक दोहराई जाती रहेगी।

3. **अध्यात्मिकता–** समाज एवं संगीत के चिरस्थाई सम्बन्धों का आधार दोनों में व्याप्त एक समान तत्व आध्यात्मिकता भी है। संसार में व्याप्त प्रत्येक समाज के हर प्राणी विशेष का प्राथमिक लक्ष्य आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होता है। अमूनन प्रत्येक समाज में ईशस्मरण संगीतमय तरीके से करने की परम्परा व्याप्त है। क्योंकि आत्मिक आनन्द की प्राप्ति संगीत के सिवा किसी अन्य माध्यम से प्राप्त करना असम्भव है। आत्म जितनी शुद्ध होगी उसका संगीत से लगाव उतना ही अधिक होगा। संगीत एवं आत्मा दोनों ही परमब्रह्म तत्व है जो मनुष्यों को ईश भक्ति के माध्यम से सांसारिकता से ऊपर उठकर मोक्ष की प्राप्ति हेतु अग्रसर करते हैं। इसी प्रयोजन से पाश्चात्य समाज 'Music is a Dynamic thing', की उक्ति, मुस्लिम समाज में प्रचलित कहावत 'जिस्म की गिजा खाना और रूह की गिजा गाना।' कही गई है। भारतीय समाज ने भी सामगान, मीरा बाई, तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास, रैदास आदि द्वारा रचित भक्ति संगीत के पदों के माध्यम से विश्व भर में आध्यात्मिकता का संदेश दिया और आध्यात्मिकता का मुख्य केन्द्र माना गया है जहां भौतिक के चर्मोत्कर्ष से त्रस्त विश्व भर के लोग आत्मिक सुख की तलाश में भारतभूमि पर आते हैं और संगीतमय ईश भक्ति करते हुए स्वयं को खोजने का प्रयास करते हैं। यह संगीत में व्याप्त आध्यात्मिकता ही है जो उन्हें साधन के रूप में सहायता प्रदान करती है। यही कारण है कि भारतीय संगीत इतना उन्नत, सात्विक एवं जीवन से भरपूर है जिसमें डूब कर प्रत्येक आत्मा अमृत्व की ओर निरन्तर बढ़ती रहती है।

4. **सामंजस्यता–** संगीत एवं समाज दोनों पर ही सामंजस्यता का सिद्धान्त पूर्ण रूप से लागू होता है। यह वह तत्व है जो अलग– अलग तरीके से कार्य करते हुए समाज एवं संगीत दोनों को सजीव बनाए रखते हैं। संगीत स्वर, लय एवं बोलों का अद्भुत तालमेल है। ये तीनों ही तत्व संगीत के साथ– साथ जीवन के भी आधार तत्व भी है। 'जब मनुष्य की आत्मा से इन तीनो तत्वों 'स्वर' अर्थात् ध्वनि, 'लय' अर्थात नाड़ी की गति एवं 'बोल' यानि शब्द। जब तक इनका तालमेल संतुलित है वह मनुष्य कहलाता है और जब यह सम्पर्क टूट जाता है तो वह 'मृतदेह' हो जाता है। ठीक उसी प्रकार समाज का आधार भी सामंजस्य है। मनुष्य समाज रूपी विशाल छत के नीचे सामंजस्य के सिद्धान्त के आधार पर ही आश्रय पाता है और सदैव सजीव एवं ऊर्जावान रहता है अन्यथा समाज के अभाव में वह निरर्थक प्राणी है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जीवन में आने वाले सुख–दुख, आशा–निराशा आदि में तालमेल बनाए रखने में समाज की भूमिका और अधिक अहम् हो जाती है।

कस्यात्यंत सुखनुपनतं दुखमेकान्ततौ वा।
नीचे गच्छत्युपरि च दशा चक्रेनेमिक्रमेण।।

अर्थात नियम से सुख ही सुख अथवा दुख ही दुख किसे रहा है। यह नियम दशा पहिए के किनारो के क्रमानुसार नीचे और ऊपर जाती रहती है। दोनो हीं दशाओं में मनुष्य के मनोभाव संगीतात्मक अभिव्यक्ति के रूप में परिवार एवं समाज के सम्मुख प्रकट होते हैं और समाज उसे आत्मसात् करते हुए निरन्तर चलते रहने की प्रेरणा देता है। भारतीय समाज इस परिपेक्ष्य में सर्वोत्तम उदाहरण कहा जा सकता है जहाँ जन्म–मरण, दुःख–सुख, तीज–त्यौहार, भक्ति, उत्सव, पर्व आदि सार्वजनिक रूप से संगीतमय तरीके से मनाए जाते है। इसलिए समाज में एक दूसरे के प्रति इतनी सजीवता एवं आत्मीयता एवं भावनाएं दृष्टिगत होती है। जबकि अन्य समाज इसका अपवाद कहा जा सकता है।

उपरोक्त लिखित विवरण संगीत एवं समाज के बीच दृष्टिगत समानता को दर्शाता है। संगीत ने समाज के बुद्धिजीवियों, विद्वानों एवं विशिष्ट सामाजिक स्तर के लोगो से लेकर, अशिक्षित, संस्कार विहिन जनों को एक सूत्र में पिरोया है और हमेशा सूत्रधार की भूमिका निर्वाह किया है। विभिन्न अवसरों पर सांगीतिक भावाभिव्यक्ति ने समाज को भावात्मक स्तर पर सदैव जोड़े रखा। जब समाज के बौद्धिक एवं भावात्मक तत्व निकट आते है तो संगीत भी समाज की अन्तःकरण का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है और संगीत सदैव 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की उक्ति को चरितार्थ करता है।

संदर्भ –

1. *आधुनिक युग में भारतीय मानव जीवन में संगीत की प्रगति–सुनीता गोयल, संगीत पत्रिका, मार्च 1989, पृष्ठ 42*
2. *विश्वसंगीत को भारत की देन – मदनलाल व्यास, सीगत पत्रिका, जनवरी–फरवरी 1983, पृष्ठ 23*
3. *निबंध संगीत – लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृष्ठ 62*
4. *ख्यालों का रूप विधान – महावीर प्रसाद मुकेश, ख्याल अंक संगीत पत्रिका, जनवरी–फरवरी 1976, पृष्ठ 25*
5. *कालिदास – मेघदूत उत्तर भाग, श्लोक संख्या 146*